जुलाई १९९३ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्म-वाणी

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ॥

यह हड्डियों का नगर बना है जो मांस और रक्त से लेपा गया है; जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं।

धम्मपद – ११/५

बुद्ध और बिम्बिसार

नगरशोभिनी धर्मशोभिनी बनी !

मगधेश बिम्बिसार की एक रात की भाड़े की भार्या जनपदकल्याणी अम्बपाली का भी भाग्योदय हुआ। वह भी भगवान के सम्पर्क में आई। इसकी संभावना कम है कि बिम्बिसार ने उसे प्रत्यक्ष प्रभावित किया हो या किसी संदेशवाहक के जरिये प्रभावित करवाया हो। परन्तु अम्बपाली को लोगों द्वरा यह सूचना तो मिली ही होगी कि उसके पुत्र विमल कौंडन्य का पिता राजा बिम्बिसार अब भगवान बुद्ध का अनन्य भक्त हो गया है। हो सकता है उसी ने अपने पुत्र को अपने पिता के पद-चिन्हों पर चलते हुए भगवान का सश्रद्ध अनुयायी बनने के लिए प्रोत्साहित किया हो। भिक्षु होने पर उसकी मूर्धन्य आध्यात्मिक उपलब्धि देख कर स्वयं भी भगवान की ओर आकर्षित हुई हो और गणिका के जघन्य पेशे को घृणास्पद मानने लगी हो। कारण जो भी रहा हो, लोगों को कामपंक में डुबाये रखने वाली अम्बपाली प्रौढ़ावस्था तक पहुँचते-पहुँचते भगवान के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु हो चुकी थी। अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में भगवान पश्चिम की ओर विहार करने के लिए राजगृह से वैशाली पहुँचे। तब तक वैशाली में शासकों के अतिरिक्त अनेक धनी-मानी लोग भगवान के अनुयायी बन चुके थे, परन्तु उनके दर्शन के लिए सबसे पहले अम्बपाली ही पहुँची क्योंकि भगवान अम्बपाली के आम्रकुंज में रुके थे। उसने अगले दिन के भोजन के लिए भगवान को आमंत्रित किया। भगवान ने मौन रह कर उसे स्वीकार किया। वैशाली में आगमन पर प्रथम दिवस के भोजन-दान का बड़ा महत्व था। अनेक प्रतिष्ठित लोग इस पुण्य को हासिल किया चाहते थे परन्तु वैशाली की गणिका के भाग्य में ही यह पुण्य बदा था।

वह अपने भाग्य पर इतराती हुई, अपने अश्वयान पर आसीन हो, प्रसन्नमन घर लौट रही थी। सामने से लिच्छवी राजकुमारों का एक समूह अपने-अपने रथों पर सवार हो, इसी ओर बढ़ा आ रहा था। उनमें से कुछएक ने नीले वस्त्र पहन रखे थे। नीले ही अलंकार और नीले रंग के रथों पर सवार थे। कुछ एक पीतवर्णीय वस्त्र-अलंकार पहने, पीतवर्णीय रथ पर सवार थे। कुछ एक रक्तवर्णीय वस्त्र-अलंकार पहने रक्तवर्णीय रथ पर सवार थे और कुछएक श्वेतवर्णीय वस्त्र पहन कर,श्वेत आभूषणों से अलंकृत हो, श्वेतवर्णीय रथों पर सवार थे। उनकी छटा अद्भुत थी, भव्य थी, दर्शनीय थी। देव-मंडली सा सुशोभित लिच्छवी राजकुमारों का यह दल भगवान के दर्शनार्थ ही जा रहा था। साधारणतया राजपरिवार या राजपुरुषों का रथ सड़क पर सामने से आ रहा हो तो प्रजा के लोग अपने रथों को सड़क से नीचे उतार लेते थे ताकि वे बिना बाधा के मुख्य सड़क पर अपना रथ हांक सकें ।परन्तु अम्बपाली आज हर्ष से फूली नहीं समा रही थी, उसने राजकुमारों के लिए रास्ता नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि राजकुमारोंके रथों के पहियों से उसके रथ के पहिये टकराये, धुरी से धुरी टकराई, जूए से जूए टकराये। राजकुमार विस्मित थे, गणिका अम्बपाली को आज यह क्या हो गया है? उन्होंने पूछ लिया, वह इस प्रकार अमर्यादित रथ क्यों चला रही है? अम्बपाली ने उत्तर दिया कि तुम्हें नहीं मालूम भगवान ने मेरे यहां कलका भोजन स्वीकार कर लिया है। भगवान उस गणिका का भोजन स्वीकार करेंगे, इसका विश्वास न राजकुमारों को था और न स्वयं अम्बपाली को। इसीलिए वह अपनी विजय पर हर्षोत्फुल्ल हो उठी थी। राजकुमारों को विस्मय के साथ-साथ दुःख भी हुआ, क्योंकि वह भी कल के भोजन-दान के लिए ही भगवान को आमंत्रित करने जा रहे थे। उन्होंने यह महसूस किया कि अब वे हार गये, अम्बपाली बाजी मार ले गई। भगवान जिसका आमंत्रण स्वीकार कर लेते थे, उसे छोड़ कर किसी अन्य के यहां भोजनार्थ नहीं जाते थे। भगवान का यह नियम सर्वविदित था। अतः उन्होंने अम्बपाली को प्रलोभन दिया, कल के भोजन-दान के बदले वह एक लाख मुद्रा ले ले। हम नहीं जानते, यह एक लाख रजत-मुद्रा का दांव था या स्वर्ण-मुद्रा का।परन्तु जो भी हो, एक रात के देह विक्रय के लिए पचास मुद्रा पाने वाली गणिका के लिए यह बहुत बड़ी रकम थी। अम्बपाली के लिए जनपदकल्याणी होने के कारण पचास मुद्राएं भी काफी कीमती रही होंगी। पर अब तो एक लाख मुद्रा की पेशकश थी। बड़ा आकर्षण था। परन्तु नगरगणिका ने भगवान के भोजन-दान के पुण्य के मुकाबले इस धन को तुच्छ समझा। इस प्रलोभन का तिरस्कार करते हुए बोली – "राजकुमारों! यदि समस्त लिच्छवी जनपद भी मुझे दे दो तो भी कल का भोजन-दान मैं तुम्हें देने वाली नहीं हूं।" लिच्छवी-कुमार परास्त हो हतप्रभ हुए और अम्बपाली अपनी विजय पर फूली हुई घर लौटी।

दूसरे दिन भगवान तथा भिक्षुसंघ को अत्यंत श्रद्धा पूर्वक भोजन-दान देकर जहां भगवान ठहरे, अपने उस आम्रवन को भी बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को दान दे दिया और महती पुण्यशालिनी हुई।

कुछसमय बाद वह अपने अरहन्त हुए पुत्र विमल कौंडन्य के जरिये विपश्यना के प्रति अत्यन्त आकर्षित हुई। उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और अपना घृणित जीवन छोड़ कर त्यागमयी तपस्विनी का जीवन जीने लगी। पूर्व-पारमिताओं ने उसे बल प्रदान किया।

वह कल्पों पूर्व भगवान पुष्य महामुनि के जीवनकाल में उनकी भगिनी थी। बृहद् दान देकर उसने धर्म-संकल्प किया था कि

इस दान के फलस्वरूप भविष्य में उसे अत्यन्त सुंदर शरीर मिले। इसी पुण्य के फलस्वरूप वह अत्यन्त रूपवती हुई। परन्तु इकत्तीस कल्पों पूर्व भगवान शिखी के जीवनकाल में उसने भिक्षुणी संघ की किसी साध्वी को कुपित हो अपशब्द कहे –"तू वेश्या है, अनाचारिणी है, जिन-शासन-दूषिका है।" इस मिथ्या दोषारोपण भरे प्रलाप के कारण खूबसूरत होते हुए भी उसे स्वयं वेश्या का जीवन जीना पड़ा, दुराचारिणी का जीवन जीना पड़ा। परन्तु साथ-साथ उसकी अनेक जन्मों की पुण्य पारमी होने के कारण भिक्षुणी अम्बपाली ने विपश्यना करते हुए अरहन्त अवस्था प्राप्त कर ली। तब तक वह अत्यन्त वृद्धा हो चुकी थी। अरहन्त होने पर जिस प्रसन्न चित्त से उसने धर्म के उद्गार प्रकट किये, वह अनित्य परिवर्तनशील शरीर की यथाभूत व्याख्या की अनुपम अभिव्यक्ति है।

वह अत्यन्त रूपवती ही नहीं थी, रूपगर्विता भी थी। वह रूप आजीवा होने के कारण स्वभावतः अपने शरीर को शृंगार प्रसाधनों से एवं वस्त्र-आभूषणों से खूब सजा-धजा कर रखती थी। भगवान ने अपने उपदेशों में उसे शरीर के सौन्दर्य की नश्वरता, भंगुरता और परिवर्तनशीलता का उपदेश दिया था –

सब्बं रूपं अनिच्चं जराभिभूतं ।

इस वृद्धावस्था में वही सत्य प्रकट हुआ। परन्तु अब उसे इसका कोई क्षोभ नहीं था, क्योंकि शरीर के प्रति उसकी आसक्ति पूर्णतया टूट चुकी थी। केवल तथ्यों की अभिव्यंजना थी ताकि औरों को इस सच्चाई से ज्ञान मिले। शरीर-सौन्दर्य के प्रति उनकी मिथ्या आसक्ति टूटे। उसने कहा –

[१] भौंरे के रंग सदृश मेरे काले केश थे। मूल से लेकर अग्र भाग तक सारे बाल घुँघराले थे। वही आज जरा-जीर्ण अवस्था में सन से सफेद हो गये हैं। सत्यवादी भगवान के वचन कभी झूठे नहीं होते।

[२] चम्पक, मल्लिका, जूही आदि पुष्पों से पूरी तरह गूंथा हुआ मेरा केश-कलाप सुगन्धि की पिटारी सदृश सदा सुवासित, सुरभित रहता था। अब भेड़ के दुर्गन्धयुक्त बालों की तरह दुर्गन्धित, दुर्वासित हो गया है। सत्यवादी भगवान के वचन कभी झूठे नहीं होते।

[३] सोने की कंघी और क्लिपों से सजा-सँवरा मेरा केश-विन्यासमय जूड़ा घने उगे उपवन सदृश सुशोभित रहता था। वही अब स्थान-स्थान के बाल टूट गिरने के कारण विरल केश हो, कैसा बदसूरत हो गया है। सत्यवादी भगवान के वचन कभी झूठे नहीं होते।

[४] कभी मेरे सिर का जूड़ा बहुमूल्य हीरों जड़ी सोने की लड़ियों से अलंकृत रहता था। भीनी-भीनी गंधों से महकती हुई चोटियों से गुँथा रहता था। वही अब जरावस्था में बालों के झड़ जाने से बदरूप और गन्दा हो गया है। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[५] कुशल चित्रकार के हाथों अत्यन्त कलात्मक रूप से अंकित की गई मेरी दोनों सुन्दर भौंहें थीं। उनकी शोभा अनुपम होती थी। अब जरा अवस्था ने उनमें झुर्रियां पैदा कर दी। खींची हुई भौंहें अब अवनत हो गईं, झुक गईं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[६] कभी मेरे नेत्र विशाल थे, उज्जवल थे। उनकी दोनों पुतलियां नील मणियों सदृश ज्योतिर्मय थी। अब वृद्धावस्था ने उन्हें अभिहत बना दिया, प्रभाहीन बना दिया, कुरूप बना दिया। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[७] नवयौवनकाल में सुन्दर शिखर सदृश ऊंची उठी हुई मेरी कोमल, सुदीर्घ नासिका को अब जरा अवस्था ने सिकुड़ा दिया है, पिचका दिया है। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[८] कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित कलापूर्ण कंकणके समान कभी मेरी कर्ण-रेखाएं थीं। वही अब जरा अवस्था में झुर्रियां पड़ कर नीचे की ओर लटक गई हैं और सौन्दर्यहीन हो गई हैं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[९] कभी मेरी दन्तावली सुन्दर कदली-कलियोंके समान सुशोभित थी। अब वही दांत जरा अवस्था में खण्डित हो गये हैं और पीले पड़ गये हैं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१०] वन-विहारिणी कोकिलाकी मधुर कूक सदृश कभी मेरी मीठी, रसीली वाणी थी। अब जरावस्था में वह स्खलित हो गई, भर्राई हुई हो गई। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[११] खरादे हुए चिकने शंख के समान सुशोभित कभी मेरी ग्रीवा थी। अब जरावस्था में वह भग्न सी है, झुकी हुई है। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१२] सुन्दर गदा के समान गोलाकार कभी मेरी दोनों बाहें थी। वही अब जरावस्था में पांडर वृक्ष की सूखी शाखाओं सदृश दुर्बल हो गई हैं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१३] पहले मेरे हाथों की सुकोमल अँगुलियां सुन्दर अँगूठियों और स्वर्णालंकारों से विभूषित रहती थीं। वही अब वृद्धावस्था में सूख कर गांठ-गठीली हो गई हैं, दुर्बल हो गई हैं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१४] मेरे वक्षस्थल पर कभी दोनों सुन्दर, सुडौल और सुगोल स्तन सुशोभित होते थे। अब वृद्धावस्था में वही पानी की रीती लटकी थैलियों जैसे हो गये हैं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१५] कभी मेरा सारा शरीर सुन्दर, शुद्ध तपे हुए सोने के पासे जैसा चमकता था। वही अब जरावस्था में नन्हीं-नन्हीं झुर्रियों से भर कर मुर्झा गया है। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१६] कभी मेरी दोनों जांघें हाथी की सूण्ड के समान सुघड़, सुन्दर थीं, सुशोभित थीं। वही अब जरावस्था में पोपले बांस की

नलियों जैसी खोखली हो गई हैं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१७] कभी मेरे सुकोमल पांव नूपुर और स्वर्णालंकारों से सुशोभित रहते थे। वही अब जरावस्था में सूखे डंठल के समान भद्दे हो गये हैं। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१८] कभी मेरी दोनों कोमल पगथलियां रूई के पहल के समान हल्की थी, सुशोभन थी। अब जरावस्था ने उन्हें सुखा कर, पिचका कर, झुर्रियों से भर कर बेडोल बना दिया है। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

[१९] मेरा यह शरीर कभी सुख का आगार था, खुशियों का भंडार था, काम-क्रीडा का केन्द्र था। अब जरावस्था में यह जर्जरित हो गया है, अनेक दुःखों का आलय हो गया है। ऐसे जरा-जीर्ण मकान के समान हो गया है जिसकी लिपाई-पुताई टूट-टूट कर गिर चुकी है। बिना मरम्मत के जिस प्रकार पुराना घर ढह जाता है, वैसे ही यह जरावस्था का शरीर बिना सेवा के शीघ्र ही पतन को प्राप्त होगा, नष्ट हो जाएगा, मात्र कंकाल का खण्डहर रह जाएगा। सचमुच सत्यवादी भगवान के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

कितने यथार्थ हैं अरहन्त अम्बपाली के ये शब्द! कितनी सही है जीवन-जगत की जरा-धर्मा, अनित्य-धर्मा, विपरिणाम-धर्मा सच्चाइयों की यह सुमांगलिक अभिव्यक्ति!!

यह उद्गार अनेकों के कल्याण के लिए पथ-प्रदर्शक बनें।

कल्याण-मित्र,
स. ना. गो.